ISSN 0975-119X

UGC-CARE GROUP I LISTED

वर्ष 13 अंक 1 जनवरी-फरवरी 2021

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

India's Leading Referred Hindi Language Journal

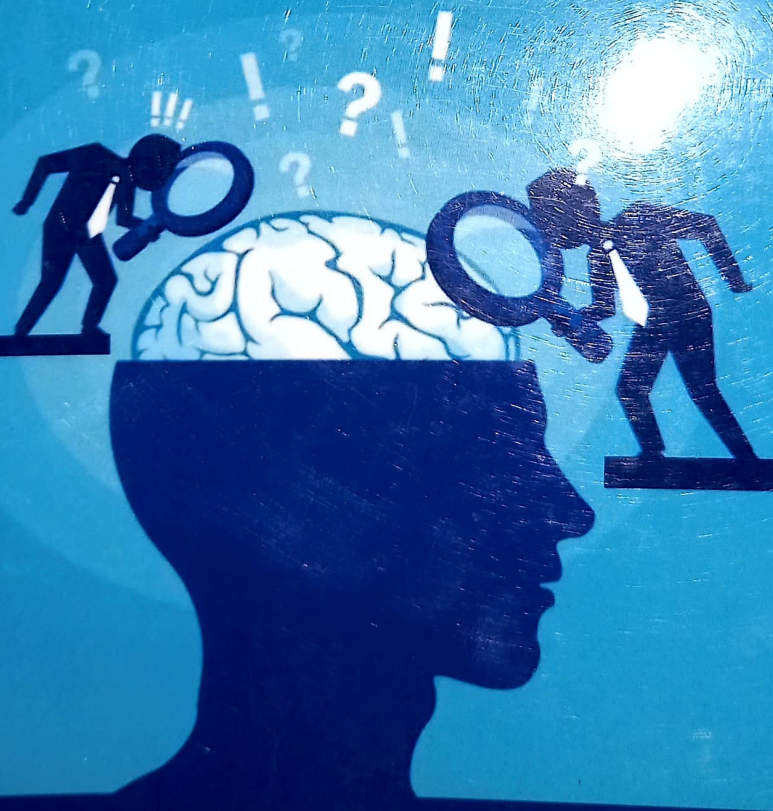

IMPACT FACTOR : 5.051

भारतीय लोकतंत्र में दल और दलबदल की राजनीति

डॉ० रविन्द्र सिंह राठौड़

सहायक आचार्य, अहिंसा एवं शांति विभागजैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूं - 341306

प्रो० अनिल धर

विभागाध्यक्ष, अहिंसा एवं शांति विभागजैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूं - 341306 (राज.)

सारांशिका

राजनीतिक दल लोकतंत्र के पहियों के रूप में अपरिहार्य है। राजनीतिक दल बहुत कुछ सीमा तक हमारे जीवन के महत्वपूर्ण अंग बन चुके है। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्थाा का संचालन राजनीतिक दलों के बिना न केवल कठिन है, अपितु असम्भव है क्योंकि आज अप्रत्यक्ष लोकतंत्र पाया जाता है जिसमें जनता स्वयं कानून का निर्माण न करके बल्कि अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से करती है। इस प्रकार राजनीतिक दल व्यक्तियों का वह समूह है जो एक निश्चित कार्यक्रम, विचारधारा पर सहमतत होते हो और एक निश्चित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सामूहिक प्रयास करते है। आज हम यह मानते है कि शासन की शक्ति संसद या व्यवस्थापिका में निवास करती है परन्तु वास्तव में इनका निवास स्थान तो राजनीति दल है क्योंकि संसद में बहुमत वाली पार्टी की कार्यपालिका बनती है, जो पूर्णतया दलीय विचारधारा एवं कार्यक्रमों को मध्यनजर रखते हुए संचालन करते है।

मुख्य शब्द: लोकतंत्र, विकृत्त, मान्यता, दल, निर्माण, अखाड़े, खोखला, दुर्भाग्य, व्याधि, अयोग्य, सिफारिशों, विधेयक, मापदण्ड, भाषावाद, राष्ट्रीय, राजनीति।

भूमिका

भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की अत्यन्त विशिष्ट भूमिका है। आजकल लगभग प्रत्येक राष्ट्र में राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उस देश के निवासी संगठित होने लगे हैं। नागरिकों के इस राजनीतिक संगठन को राजनीतिक दल कहते है। भारत एक बहुदलीय व्यवस्था वाला देश है। यहां अनेक राष्ट्रीय स्तर एवं क्षेत्रीय स्तर के दलों का अस्तित्व पाया जाता है। राजनीतिक दलों का इतिहास लोकतंत्र से भी ज्यादा पुराना है। सभी देशों में हर प्रकार की शासन व्यवस्था के अन्तर्गत दलों का अस्तित्व रहा है। जहां तक लोकतंत्र का प्रश्न है उसमें 'सता के लिए संघर्ष' लुक छिपकर नहीं बल्कि खुलकर होता है। लोगों को राजनीतिक दलों का निर्माण करने की छूट होती है। जो दल चुनावी संघर्ष में विजय प्राप्त करता है, वह अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के अनुसार शासन का संचालन करता है। विरोधी दल सरकार पर अंकुश का कार्य करते हैं। इस प्रकार संसदीय लोकतंत्र का भविष्य स्वस्थ दल पद्धति पर निर्भर करता है, लेकिन आज क्या कारण है कि भारत में दलीय व्यवस्था का स्वरूप दिन-प्रतिदिन विकृत होता जा रहा है। विभिन्न दलों में सत्ता की लालसा एवं स्वार्थ की आकंठ प्रवृति बढ़ती जा रही है जो भारतीय लोकतंत्र के लिए एक खतरा है। इस पर हमें विचार करना होगा।[1]

बिना राजनीतिक दलों के न तो सिद्धांतों की संगठित अभिव्यक्ति हो सकती है और न नीतियों का व्यवस्थित विकास, न संसदीय निर्वाचन के संवैधानिक साधन का अथवा अन्य किसी मान्यता प्राप्त ऐसी संस्था का नियमित प्रयोग जिसके द्वारा दल सता प्राप्त करते है और इसे बनाये रखते है।[2] अतः जनतंत्रीय शासन व्यवस्था में जनता की इच्छा द्वारा राज्य के कार्यों की प्रकृति का निर्धारण होता है।

किसी भी लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था वाले देश में राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। किसी भी देश में राजनीतिक दल केवल उस देश की राजनीतिक परिस्थितियों का ही परिणाम नहीं होते बल्कि वे उस देश के इतिहास, संस्कृति, भूगोल तथा अर्थव्यवस्था से प्रभावित होते हैं। लोकतंत्रीय शासन के लिए राजनीतिक दल अपरिहार्य होते हैं। लोकतंत्र का चाहे कोई भी स्वरूप क्यों न हो व राजनीतिक दलों की अनुपस्थिति में अकल्पनीय है। इसलिए दलीय व्यवस्था को लोकतंत्र का प्राण कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी।[3] राजनीतिक दल प्रतिनिधिक जनतंत्र का आधार होते हैं। प्रो. मुनरों का मत है कि "स्वतंत्र राजनीतिक दल की लोकतंत्रीय सरकार का दूसरा नाम है।" ये जनमत के निर्माण, नागरिकों को राजनीतिक प्रशिक्षण, शासन के प्रति जागरूकता आदि कार्य करते हैं।

प्रारंभ में भारत की जनता कांग्रेस के स्वर्णिम इतिहास से अभिभूत थी, लेकिन धीरे-धीरे जब विपक्ष ने अपने आपको राष्ट्रीय राजनीति के लिए तैयार कर लिया और अनेकों क्षेत्रीय दलों ने अपना प्रभाव स्थापित करना शुरू कर दिया तब कांग्रेस का एक छात्र राज विघटित होना प्रारंभ हुआ और इसके बाद बहुमत का गणित ही राजनीति का केन्द्र बिन्दू बन गया। आज जब देश में अस्थिर सरकारों एवं मिली-जुली सरकारों का दौर चल रहा है तब क्षेत्रीय दल अपना प्रभाव स्थापित कर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है।

भारतीय राजनीतिक में सर्वप्रथम सन् 1967 के आम चुनावों में दलबदल का राजनीतिक खेल शुरू हुआ। दलबदल की राजनीति के प्रमुख अखाड़े हरियाणा, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल रहे है। आज भी दलबदल की घटनायें कम नहीं हुई है। दलबदल हमारे लोकतंत्र को वर्णों से खोखला कर रहा है, इसे और अधिक प्रोत्साहन देकर हम निश्चित ही लोकतंत्र का भला नहीं कर रहे है। दल बदल के कारण मध्यप्रदेश में कांग्रेस सरकार की जगह भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनी और राजस्थान में बहुजन समाज पार्टी के विधायक कांग्रेस में शामिल हुए यह दल बदल के ताजा उदाहरण है।

दल बदल का अंग्रेजी में जिन विभिन्न पदबंधों का अर्वाचीन पत्र-पत्रिका, साहित्य के लिए प्रयोग किया जा रहा है उनमें से कुछ है- चेन्जिंग अथवा क्रांसिग ऑफ फ्लोर्स (फर्श बदलना), कार्पोट क्रासिंग (एक गलीचे से दूसरे पर जाना), पॉलिटिकल टर्न कोटिज्म (अवसरवादिता), पॉलिटिक्स ऑफ डिफ्रेक्शन (अपने नेता, दल अथवा सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा त्यागने की राजनीति) आदिद पर इन सब शब्दो और पदों का एक ही अर्थ नहीं हो सकता। अतः एक ही प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न शब्दो और पदों का प्रयुक्त किया जाना दुर्भाग्य की बात है। यह हमारी बौद्धिक शिथिलता और असावधानी का द्योतक है।[4]

भारत में सर्वप्रथम 1968 में श्री यशवन्तराव बलवंतराव चव्हाण की अध्यक्षता में चव्हाण समिति गठित की गई। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में दलबदल की बढ़ती प्रवृति पर सरकार का ध्यान आकर्षित किया था। मार्च 1968 में श्री चव्हाण ने लोकसभा में कहा था कि "दल बदल का रोग एक राष्ट्रीय व्याधि का रूप धारण कर चुका है जो हमारे लोकतंत्र के प्राण तत्वों को अदंर ही अंदर खाये जा रहा है, जिस पर गंभीरता से विचार किया जाये। इसके परिणाम स्वरूप चव्हाण समिति की कुल मिलाकर 6 बैठकें आयोजित हुई तथा 18 फरवरी, 1969 को इस समिति ने अपनी रिपोर्ट संसद के सामने पेश की जिसमें कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें थी कि -

1. राजनीतिक दलों के लिए व्यवहार संहिता की आवश्यकता।
2. प्रतिनिधित्व के स्वरूप और प्रतिनिधियों के कर्त्तव्यों को समझना।
3. जो व्यक्ति निम्न सदन का सदस्य नहीं हो उसे प्रधानमंत्री अथवा मुख्यमंत्री नियुक्त किये जाने पर प्रतिबन्ध।
4. दल बदलुओं को मंत्री बनाने पर रोक तथा विधानमंडल की सदस्यता के लिए अयोग्य ठहराना।
5. राजनीतिक दलों का पंजीकरण आदि, लेकिन इस रिपोर्ट पर अन्य सदस्यों में तीव्र विरोध रहा जिसके कारण सरकार ने इस समिति की सिफारिशों पर कोई ध्यान नहीं दिया।[5]

दलबदल कानून (जनवरी 1985) के आधार पर अयोग्यता इस विधेयक के आधार पर सदन का कोई सदस्य जो किसी राजनीतिक दल का सदस्य है सदन का सदस्य होने के अयोग्य हो जाता है।

राजीव गांधी ने 1985 में संविधान की दसवीं अनुसूची में संशोधन करके दलबदल विरोधी कानून लागू कर दिया। विधायक और सांसद यदि पार्टी से इस्तीफा दें या फिर व्हिप का उल्लघंन करें तो उनकी सदस्यता खत्म करने के लिए इस कानून में प्रावधान किया गया। इससे नेताओं का दलबदल का मर्ज तो कम हुआ, लेकिन उसके बाद एमएलए, एमपी दलों के बंधुआ गुलाम जैसे हो गए। इसलिए बदलावों और सख्ती के बावजूद दलबदल कानून में अनेक सुराख कर लिए गए। इसकी शुरूआत पार्टियों के दो तिहाई विधायकों को तोड़कर या उन्हें विलय में फंसाने के माध्यम से हुई। उसके बाद विधायकों की बगावत से राज्यों में सरकारों को गिराने का खेल शुरू हो गया। दलों को छोड़कर जाने वाले विधायकों/सांसदों को कानून के तहत अयोग्य घोषित कर दिया जाता है लेकिन मणिपुर, कर्नाटक और म.प्र. के मामलों में साफ है कि अयोग्य घोषित हुए लोग उपचुनाव के जरिए जीतकर नियमों को ठेंगा दिखाने लगते है और जनता का विश्वास जिस पार्टी से था उसे वे तोड़कर दूसरी पार्टी का दामन अपने स्वार्थ के लिए थाम लेता है।[6]

आज भारतीय दलीय व्यवस्था जिस जगत् में प्रवेश करती है उसकी परिस्थितियों और चिंतन की अवधारणाऐं अलग किस्म की है और जिनकी व्याख्यायें पश्चिमी मापदण्डों से करने से समस्याओं के सही निदान कठिन हो जाते है। एक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में समन्वय, अनुक्रम प्रतिरोध, विरोध और अवरोध आदि की प्रक्रियायें मूलतः दलों के सिद्धान्तों उद्देश्यों सहित दल के अंदर और बाहर की घटनाओं तथा दलीय व्यवस्था के पारस्परिक संबंधों से जुड़ी होती है, लेकिन आज भारतीय दल व्यवस्था अन्तविरोध से ग्रस्त है। दलों में प्रत्याशी चयन की प्रक्रिया, दलो का संगठन, दलों की आंतरिक कार्य पद्धति, दलों में नीतियों के निर्माण की प्रक्रिया, दल के तथाकथित सदस्यों आपसी संबंध आदि प्रमुख अवरोध है।[7]

भारतीय दलीय व्यवस्था का स्वरूप पश्चिम के लोकतांत्रिक राजनीतिक दलों से भिन्न है। इनके आधार विविधता पूर्ण हैं और यह लोकतांत्रिक आदर्शों के प्रतिकूल अनेक दोशों से गहराई के साथ जुड़ गये है। जातीयता, क्षेत्रीयता, भाषावाद, धर्म से प्रभावित व्यक्तियों के नाम संगठित, संगठन में तदर्थवाद की पोषक नीतियां एवं कार्यक्रमों की अस्पष्टता, जनता को आकर्षित करने के लिए विवेक और तर्क के स्थान पर भावनाओं को भड़काने की कार्य प्रणाली, असामाजिक तत्वों के निकटता, दल संचालन के लिए काले धन का सहयोग लेना, दल केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति और करिश्माई नेतृत्व के द्वारा सफलता की आकांक्षा आदि दोशों से पीड़ित है। दलों के संविधान औपचारिक है और उन्हें पूर्णतः भारतीय संविधान के अनुकूल नहीं माना जा सकता है। दल के संविधान में आस्था के अभाव में सदस्य सामंजस्य और सहयोग के स्थान पर दल त्याग के छोटे से रास्ते को वरीयता प्रदान करता है। इस प्रकार यदि हम भारतीय दलीय व्यवस्था के स्वरूप का अवलोकन करें तो हमें ज्ञात होता है कि अब एक दल की प्रधानता के स्थान पर विभिन्न दलों का प्रभाव दिखाई दे रहा है।

भारत की दलीय प्रणाली यद्पि बहुदलीय है, परंतु कांग्रेस ने एक लंबे समय तक एक दलीय प्रणाली की तरह कार्य किया है, किन्तु कुछ वर्णों से भारत में संविद या मिली-जुली सरकारों के युग का प्रारंभ हुआ है जैसे कि 1996, 1998 एवं 1999 के लोकसभा चुनावों में किसी राष्ट्रीय राजनीतिक दल को न तो स्पष्ट बहुमत मिला और न ही वे अकेले या कुछ राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को मिलाकर सरकार बनाने की स्थिति में रहे है। ऐसी स्थिति में एक

दलीय सरकार का युग समाप्त हो गया जान पड़ता है। राष्ट्रीय स्तर पर गठबन्धन राजनीति या संविद राजनीतिक ही एक मात्र विकल्प दिखाई देता है। 1999 के बाद राष्ट्रीय राजनीति मे दिन-प्रतिदिन बदलाव आते रहे हैं। गठबन्धन सरकारें में बढ़ते भ्रष्टाचार और अवसरवादिता के कारण लोगों का इनसे विश्वास उठता चला गया।

दल बदल की प्रवृति भारतीय दलीय व्यवस्था की एक लंबे समय तक विकृति रही है। उनमें अवसरवादिता के दर्शन होते है। प्राय: सभी दल विघटन एंव फूट के शिकार बने है। बहुत से लोगों को एक दल की सदस्यता छोड़कर दूसरे दल का सदस्य बनाने में बिलकुल हिचकिचाहट नहीं होती। भारतीय दलीय व्यवस्था में लगभग सभी राजनीतिक दलों में छोटे-छोटे गुट पाये जाते है। उनमें एक गुट वह है जो सता में है और दूसरा गुट असंतुष्ट गुट है। इन गुटों में पारस्परिक मतभेद इस सीमा तक पाया जाता है कि कभी-कभी निर्वाचन में एक गुट के समर्थन प्राप्त उम्मीदवारों को दूसरे गुट के सदस्य पराजित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। इससे सता के लिए अनवरत संघर्ष चलता रहता है और राज्यों में नेतृत्व परिवर्तन की घटनाये प्राय: घटित होती रहती है।[8] इसका नवीन उदाहरण राजस्थान की कांग्रेस सरकार में अशोक गहलोत व सचिन पायलेट ग्रुप का होना, इसी कारण मंत्रिमंडल विस्तार व मुख्यमंत्री के मुद्दों पर निर्णय न ले पाना और सरकार गिराने के प्रयास करना रहा है।

साम्प्रदायिक और जातिवाद इस दलीय व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। कई दल अपने नाम से ही साम्प्रदायिक दिखाई देते है जैसे हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग तथा अकाली दल। चुनावों के समय दल के उम्मीदवारें का चयन वे इसी आधार पर करते है कि अमुक चुनाव क्षेत्र में हिन्दुओं, मुसलमानों और अनुसूचित जातियों की जनसंख्या का अनुपात क्या है। राष्ट्रीय दलों ने साम्प्रदायिक शक्तियों से समझौते किये और इस प्रकार साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया है जो काफी कष्टकारी होता है। इसी प्रकार जातिवाद का प्रश्न भारत के आधुनिक बनने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। आज जातिवाद भारतीय राजनीतिक का एक केन्द्रीय सवाल है। राजनीतिक दल जाति के आधार पर वोट बटोरने की हर हालत में कोशिश में रहते हैं। राजनीतिक दल को भी धर्मो के साथ जोड़ कर देखा जाने लगा है। जैसे कांग्रेस को मुस्लिम व दलित वर्ग से जोड़ना और बीजेपी को हिन्दू व अन्य वर्गों से जोड़ना रहा है।

भारत में प्रमुख रूप से तीन प्रकार के क्षेत्रीय दल है। क्षेत्रीय दल जो वास्तव में जाति, धर्म क्षेत्र सामुदायिक हितों का प्रतिनिधित्व करते है और उन पर आधारित है जैसे - तमिलनाडु में डी.एम.के. अन्नादुमक, पंजाब में अकाली दल, हरियाणा में ईनेलो जम्मु कश्मीर में नेशनल कान्फ्रेंस, महाराष्ट्र शिव सेना, दिल्ली में आप पार्टी, पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस, बिहार लोकजपा, उत्तर प्रदेश, सपा व बहुजन समाज पार्टी आदि। ये क्षेत्रीय दल चाहते है कि राज्यों को अपने-अपने कार्यक्षेत्र में स्वायत बनाया जाये, परन्तु कई क्षेत्रीय दल ऐसे है जो अलगावाद का प्रचार करते है। अत: राज्यों की स्वतंत्रता के नाम पर देश को खण्डित करने की प्रवृत्ति का विरोध किया जाना चाहिए।[9]

एक उदाहरण से हम समझ सकते हैं कि कर्नाटक के विधायक ए.एच विश्वनाथ के मामले में सुप्रीम कोर्ट के नवीनतम फैसले से उलझने और बढ़ गई। स्पीकर ने विश्वनाथ को दसवीं अनुसूची के तहत दलबदल का दोशी करार दिया था, लेकिन सुप्रीम कोर्ट के फैसले से उन्हें दोबारा विधायक बनने की मोहलत मिल गई थी। किन्तु उपचुनाव में हारने पर येदुरप्पा सरकार ने विश्वनाथ का विधान परिषद् में मनोनयन करके उन्हें मंत्री बना दिया। कर्नाटक हाईकोर्ट के उस फैसले पर अब सुप्रीम कोर्ट ने मुहर लगा दी है जिसके अनुसार 164 के तहत सदन के बकाया कार्यकाल यानी साल 2021 तक विश्वनाथ की अयोग्यता जारी रहेगी। सुप्रीम कोर्ट के फैसले से एक नया वर्गीकरण हो गया है। इससे दलबदल करने पर अयोग्य घोषित लोग उपचुनाव में विधायक बनकर तो बकाया कार्यकाल में मंत्री बन सकते है, लेकिन मनोनयन के रास्ते से विधायक बनने वालों पर अयोग्यता के प्रावधान लागू रहेंगे और वे मंत्री नहीं बन सकते।[10]

आज चुनावी हिंसा भारत की दलीय व्यवस्था में एक कुप्रभावी मानी जा रही है। 1952 में स्वतंत्र भारत में चुनावों का सिलसिला शुरू हुआ उस समय चुनावी अभियान का स्तर ऊंचा था। धीरे-धीरे उसमें गिरावट आई और स्थिति यहां तक जा पहुंची कि चुनाव परिणाम को प्रभावित करने के लिए केवल लाठियों का ही नहीं बल्कि राइफलों और हथगोलों का प्रयोग किया जाने लगा। जिससे राजनीति में अपराधीकरण की प्रवृत्ति दिनों दिन बढ़ती ही गई। इसके अनेकों उदाहरण प्रतिवर्ष देखने को मिलते हैं। बूथ केपचरिंग, हिंसा, आगजनी, तोड़फोड़ आदि इस के रूप है।

उपसंहार

इस प्रकार स्पष्ट है कि आज दलों की प्रासंगिकता समाप्त होती जा रही है। जनता की एक दलीय और मिली जुली सरकारों के प्रति बढ़ती निराशा और नाराजगी के कारण हम ऐसी स्थिति में पहुंच रहे है जहां प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं का संचालन कठिन हो जायेगा। अत: इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भारत में सिद्धान्त विहीन राजनीति का दौर अपनी चरम सीमा पर है। ऐसी स्थिति में इस देश का मतदाता आज बहुत भ्रमित है, बड़ी अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में है, वर्तमान जनादेश उसी का प्रतिबिम्ब है। अत: हम कह सकते है कि भारतीय दलीय व्यवस्था का स्वरूप निरंतर परिवर्तनशील दिखाई दे रहा है, जिसमें बहुदलीय व्यवस्था होते हुए भी कुछ वर्षों तक एक दल की प्रधानताा रही है। तत्पश्चात् मिली जुली सरकारों का निर्माण प्रारंभ हुआ। जो अस्थिर सिद्ध हुई। व्यक्तिवाद को महत्व दिया गया, दलगत चरित्र का पतन होने लगा और स्वार्थ की राजनीति ने जन्म लिया। दल बदल की घटनायें बढ़ती गई है। अवसरवादिता की प्रवृत्ति के कारण दलों में विभाजन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। क्षेत्रीय दलों का वर्चस्व बढ़ने लगा। भ्रष्टाचार और अपराधीकरण दलें के सिद्धान्तों को प्रभावित करने लगा उनमें अनुशासनहीनता की भावना बढ़ने लगी जातिवाद और साम्प्रदायिकता पर आधारित दलों का निर्माण होने लगा। चुनावों में जाति की राजनीतिक शक्ति ने घृणित राजनीतिक का माध्यम बना दिया। दल विभाजन की आड़ में सत्ता की राजनीति होने लगी। चाहे भले ही चुनावों चन्दा इकट्ठा कर बेहिसाब पैसा खर्च करते है और अनैतिक तरीकों से सत्ता प्राप्त करना चाहते है। आज हम एक दलीय या मिली जुली सरकारो के प्रयोग से हटकर आगे देखने का प्रयास करें जिससे जनहित का उद्देश्य निहित होता हो तभी भारत मे संसदीय लोकतंत्र सफल हो सकता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. राजेश जैन, भारतीय राजनीति के नये आयाम, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2000
2. डॉ. पुखराज जैन, राजनीति विज्ञान के मूल आधार, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 1998

3. स्व. पी.के. चडड्ा, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, यूनिवर्सिटी बुक हाऊस, जयपुर, 2001
4. डॉ. बी.एल., फडिया, राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन आगरा
5. डॉ. पुखराज जैन, प्रमुख राज व्यवस्थाऐं, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 1999
6. डॉ. जुगल किशोर दाधीच, लोकतंत्र और विकास, नीरज पब्लिकेशन, दिल्ली
7. डॉ. आर.एन. द्विवेदी, डॉ. एम.पी.राय, भारतीय सरकार एवं राजनीति कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1999
8. विराट गुप्ता, कवर स्टोरी, रसरंग-दैनिक भास्कर, रविवार, 31.01.2021
9. एन.एम. गहलोत, भारतीय राजनीति व्यवस्था (दशा एवं दिशा), नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2004
10. सुभाष कश्यप, भारतीय राजनीति और संविधान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
11. वी.सी. नरूला, राजनीति शास्त्र विश्व कोश, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2009
12. पवन कुमार, भारतीय राजनीति की दिशा एवं दशा, वंदना पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, 2011
13. डॉ. अशोक कुमार महला, डॉ. ऑलिव पीकॉक, अरिहंत पब्लिकेशन हाऊस, जयपुर, 2011
14. डॉ. आर.बी. भाकरे, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, इशिका पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2015

अन्य स्रोत

1. दैनिक भास्कर, रसरंग, रविवार, 31.01.2021
2. दैनिक भास्कर, 31.01.2021

(Footnotes)

1. डॉ. वी.सी. तायल : भारतीय शासन अैर राजनीति, 1996, पृष्ठ संख्या 393
2. आर.एम. माकलेवर, दा मार्डन स्टेट, पृष्ठ संख्या 316
3. डॉ. पुखराज जैन, भारतीय शासन एवं राजनीतिक, पृष्ठ संख्या 464
4. डॉ. सुभाष कश्यप, दलबदल और राज्यों की राजनीति, पृष्ठ संख्या 15-16
5. वही, पृष्ठ संख्या 54-55
6. दैनिक भास्कर, रसरंग, रविवार, 31.01.2021
7. डॉ. एम.पी मोदी, भारतीय राजनीति की प्रवृत्तियां, 1999, पृष्ठ संख्या 14
8. डॉ. आर.एन. त्रिवेदी एवं डॉ. एम.पी. राय, भारतीय सरकार एवं राजनीति, 1999, पृष्ठ संख्या 259
9. डॉ. एम.पी. राय एवं आर.एन. त्रिवेदी, भारतीय सरकार एवं राजनीति, 1999, पृष्ठ संख्या 230
10. दैनिक भास्कर, 31.01.2021